चन्द्रकान्ता की कहानियों में कामकाजी स्त्रियों का जीवन संघर्ष

प्रेम कुमार
शोधार्थी- पी-एच. डी. तुलनात्मक साहित्य
म. गां. अं. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
premkumar2169@gmail.com

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माण में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय समाज में नारी को पुरुष की अनुगामिनी, अनुचर अथवा दासी समझा जाता है जबकि वह पुरुष संघर्ष की प्रेरणा और प्रतीक है। ममता, वात्सल्य, स्नेह, दया, कोमलता और त्याग आदि गुणों के आधार पर विचार किया जाए तो पुरुष की तुलना में स्त्री अधिक मानवीय है। आज का युग भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अंधी दौड़ में परिगणित हो गया है। समाज में अनेक बदलाव आ गए हैं किन्तु स्त्री की दशा में खास सुधार नहीं हुआ। पहले वह घर की चारदीवारी में कैद दयनीय जीवन जी रही थी, अब वह अपने अस्तित्व की खोज में बाहर निकलने लगी तो अपनी अस्मिता पर अनेक प्रहार सहती अपमानित हो रही है।

घर और बाहर के अवसाद, तनाव, घुटन, निराशा, जड़ता, शारीरिक और मानसिक शोषण से उपजी विसंगतियों, विडम्बनाओं, टकरावों तथा छटपटाहट को सहने वाली आज की नारी के विविध आयामों को समकालीन महिला कथाकार 'चन्द्रकान्ता' ने अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया है। उनकी कहानियाँ मानव संबंधों में निरंतर हो रहे पतन और विघटित सामाजिक मूल्यों के मध्य पिसते नारी जीवन और उसके संघर्षों का सम्पूर्ण मानचित्र हैं।

आज के युग में बढ़ती महंगाई भारतीय अर्थव्यवस्था को दीमक की तरह खोखला कर रही है। आसमान छूती महंगाई के इस दौर में आम आदमी का जीवन यापन करना मुश्किल हो रहा है। खर्चा निरंतर बढ़कर दोगुना हो गया है और आमदनी उसकी अठन्नी है। फलतः एक व्यक्ति की कमाई में पूरे परिवार का भरण-पोषण असंभव होता जा रहा है। स्त्री अपने पति अथवा परिवार पर बोझ बनकर नहीं रहना चाहती इसलिए उसकी ख्वाहिश है कि वह आत्मनिर्भर बन सके। वह अपना भार अपने कंधों पर लेना चाहती है और इसी में स्त्री-पुरुष की पूरकता भी है।

कामकाजी स्त्रियों को प्रतिदिन अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वे घर से निकलते ही गलियों, चौराहों पर अनेक दूषित नजरों व भद्दे 'कमेंट्स' को सुनते हुए दफ्तर अथवा कार्यस्थल पर पहुँचती हैं। वहाँ पहुँचने पर भी वे स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं कर पातीं, क्योंकि वहाँ उन्हें अपने मालिक, बॉस, सीनियर्स अथवा सह-कर्मचारियों द्वारा शारीरिक व मानसिक शोषण को सहना पड़ता है। कामकाजी नारियों की जो स्थिति होती है और परिवार अथवा समाज का उनके प्रति जो रवैया है चन्द्रकान्ता उसको 'शेष दिन' नामक कहानी में विश्लेषित करती हैं। कहानी की नायिका रत्ना एक प्राइवेट फर्म में नौकरी करती है। वह उस फर्म में ऊँचे ओहदे पर कार्यरत है। अपने ओहदे के अनुरूप वह वस्त्रों को पहनती है और साज-श्रृंगार कर ड्यूटी जाती है। किन्तु उसका शराबी पति इन सबका गलत ही अर्थ निकालता है। वह समझता है कि नौकरी तो एक बहाना है रत्ना का अपने बॉस अथवा किसी अन्य पुरुष के साथ अवैध संबंध है। उसी के लिए वह सजती-सँवरती है। शक करना उसकी नियति बन जाती है। शराब के नशे में वह हर रात उसे गालियाँ देता है। इतना ही नहीं वह हर रात उसे बेंत से मारता-पीटता और उसकी देह पर चढ़कर जंगली दरिंदा बन उसका बलात्कार करता है। घर में भय का माहौल था। बच्चे पिता के डर के साए में जी रहे थे। आए दिन की मार-पीट, गाली-गलौज, टूट-फूट में घर घर न बचा था वह तो केवल ईंट पत्थर से बना मकान ही रह गया था क्योंकि घर तो कब का टूटकर बिखर चुका था। लेकिन फिर भी रत्ना अपने बच्चों की खातिर उसमें रहने को विवश थी जैसे वह दीवारों से सर टकराते अपने दिन गुजार रही हो - "घर था वह ! लोहे की भारी भरकम जंग खाया पिंजरा सीखचों से सर टकराते उसने उम्र के बेहतरीन साल इंच-इंच मरते गुजार दिये, क्योंकि वह बच्चों की माँ थी।"[1]

तेजी से बदलते समाज में आज स्त्री भी स्वयं को बदला हुआ पा रही है। उसके कार्य क्षेत्रों में भी बदलाव आया है इसलिए उसके अनुभव क्षेत्र भी अधिक व्यापक हुए हैं। नारी के अनुभव क्षेत्रों की इन्हीं व्यापकताओं और विविधताओं को चन्द्रकान्ता अपनी कहानियों में रेखांकित करती हैं। 'धराशायी' नामक कहानी की नायिका वी. वी. पारिवारिक दायित्वों को निभाने वाली एक ईमानदार कामकाजी नारी है। वह शरीर अथवा मन दोनों से ही सुंदर है। सहकर्मचारियों के मध्य उसकी सुंदरता हमेशा ही चर्चा का विषय बनी रहती है। लेखिका इन शब्दों के माध्यम से उसका बिम्ब बनाती है - "उनके मीना कुमारी के लहजे में बोलने का लहजा, दुबली-लंबी अंगुलियों को फैलाकर संकेतों से, बोले गये शेरों के अर्थ समझाने की अदा और पीठ पर फैले खुले बालों को जब-जब सिर के हल्के झटके से एक तरफ लहराने का अंदाज़ नीलाभ के शब्दों में 'जानलेवा' हो सकता था।"[2] फैक्ट्री हो या लिमिटेड कंपनियाँ, प्रशासनिक क्षेत्र हो अथवा शैक्षणिक क्षेत्र सभी जगहों पर भाई-भतीजावाद तथा चापलूसी नामक भुजंग कुंडली मारकर बैठा हुआ है। पदोन्नति की लालसा में आलसी, कामचोर और अयोग्य व्यक्ति अपने बॉस की मालिश और पालिश करते नजर आते हैं। वी.वी. सुबह से शाम तक बिना आराम किए पूरी ईमानदारी के साथ कठोर परिश्रम करती है। फिर भी उसकी पदोन्नति नहीं होती। वी.वी. में योग्यता की कोई कमी नहीं हैं किन्तु वह सदानंद सत्याग्रही की चमचागीरी नहीं करती। वह बॉस के सामने अपनी देह की नुमाईश नहीं करती और न ही वह सत्याग्रही की झूठी तरीफों के पुल बाँधती है जिस प्रकार आहूजा और रमणी करते हैं। फलस्वरूप आहूजा और रमणी का प्रमोशन कर

दिया जाता है। वी.वी. का मन पराजय बोध से भर उठता है। वह निश्चय करती है कि वह अन्याय नहीं सहेगी और न ही दब कर रहेगी। वह प्रतिरोध करने की ठान लेती है। वह फर्म में काम करने वालों से भी कहती है – "तुम दब्बू बाबू लोग फाइलें चाटने और बॉस के सामने शीर्षासन करने के सिवा कर भी क्या सकते हो।"[3] अपने बॉस की अय्याशियों और काली करतूतों के चिट्ठे को वी. वी. कथा के रूप में व्यक्त करती है। उसका यह आंदोलन सफल होता है और वी.वी. को उसका हक मिलता है। इस प्रकार की अनेक समस्याओं से भारतीय कामकाजी नारियाँ रोज दो-चार होती हैं। किन्तु उनको परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेकने चाहिए। वी.वी. की भाँति उन्हें भी संघर्ष करना चाहिए और अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए अपने अस्तित्व को सिद्ध करना चाहिए।

कामकाजी नारियों की दशा आज भी अत्यंत दयनीय है उनकी स्थितियों में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। कई बार उन्हें अपने बच्चों के लिए अच्छा भोजन, शिक्षा, स्वस्थ्य और पारिवारिक अर्थाभाव के कारण मजबूरी में बाहर काम करने जाना पड़ता है। आज के समय में अर्थ ही मानव जीवन का आधार है। भारत में काफी संख्या में ऐसे लोग हैं जो अर्थाभाव के कारण भूख और कुपोषण से ग्रस्त होकर अपने प्राण गँवा बैठते हैं। घर चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है स्त्रियाँ भी उसमें बराबरी का सहयोग देना चाहती हैं। कामकाजी नारियाँ पुरुषों के बराबर ही नहीं अपितु घर एवं बाहर के कार्यों को मिलाया जाए तो वे पुरुषों से अधिक कार्य करती हैं। बावजूद इसके पुरुष परिवार का नियंता एवं शासक की भूमिका में है। इतना ही नहीं वह स्त्री को अपने पाँव की जूती समझता है। उस पर चरित्र संबंधी संदेह करना, आरोप लगाना, जब चाहे मारना-पीटना, पशुओं जैसा व्यवहार करना आदि, उसकी नियति का अनिवार्य अंग बन गई है। डॉ. रेखा मुले के शब्दों में - "घर परिवार में जो कूटनीति चलती हैं, उसका पहला शिकार पत्नियाँ ही होती हैं। पुरुष आज भी अपनी उन्नति पर इतराता है परंतु उसकी उन्नति के मूल में नींव की ईंट बनी अपनी पत्नी को भूल जाता है। स्त्री अपने ही घर में अजनबी बन जाती है।"[4]

चन्द्रकान्ता की कहानियों में वर्तमान समाज में स्त्री द्वारा भोगे जा रहे घर और बाहर के दोहरे संघर्ष और उनसे उपजे मानसिक तनाव का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। 'अनार के फूल' कहानी की रामप्यारी कोई बड़े ओहदे पर काम करने वाली पदाधिकारी नहीं है बल्कि वह तो फूल बनाने वाली एक मजदूरिन है। लेकिन वहाँ भी भेड़िए अपना मुँह खोले खड़े हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री मनुष्य नहीं हैं वह तो केवल भोगने की वस्तु मात्र है। रामप्यारी का ठेकेदार इसी प्रकार का एक भेड़िया है जो कि उसको देखते ही लार टपकाने लगता है। आवारा कुत्ते की भाँति वह पूँछ हिलाता उसके आगे-पीछे घूमता रहता है। वह रामप्यारी के सामने उसके सौंदर्य की तारीफ़ों के पुल बाँधने लगता है और ऐसा करते समय वह किसी न किसी बहाने से उसकी देह को छूने लगता है। कार्यस्थल कोई भी हो, किसी प्रकार अथवा वर्ग से संबंधित क्यों न हो वहाँ के अधिकांशतः पुरुष महिला कर्मियों पर शिकार की भाँति निशाना लगाकर बैठे हुए हैं। वह नारी देह का भक्षण करना चाहते हैं। 'प्यारिया तो बौरा गया' कहानी में प्यारे की माँ घर-घर जाकर झाड़ू लगाने व बर्तन धोने का काम करती है। वह पहले तो मोहल्ले के कई घरों में जी तोड़ परिश्रम करती है उसके पश्चात अपने घर के अनिवार्य कार्यों

में खटती है। इतने कठोर परिश्रम से उसकी देह कराह उठती है। ऐसी कर्मवीर स्त्रियों के संघर्षों को हम इन पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं - "सवेरे छह बजे गोद में बालक को तथा भोजन के लिए मोटी काली रोटी लेकर मजदूरी के लिए निकली हुई वह स्त्री जब सात बजे संध्या समय घर लौटती है तो संसार भर का आहत मातृत्व मानों उसके शुष्क ओठों में कराह उठता है। शांत शिथिल शरीर से फिर घर का आवश्यक कार्य करते हुए और उस पर कभी-कभी अद्यप पति के निष्ठुर प्रहारों को देखकर करुणा भी आए बिना नहीं रहती। तब समाज सब कुछ जानते-बूझते हुए भी क्यों अंजान बना रहता है।"[5] प्यारे की माँ सभी घरों की साफ-सफाई, झाड़ू-पोंछा आदि पूरा काम बड़ी लगन और कुशलता से करती है । लेकिन उसके मालिक की नजर उसके भूखे पेट, बिलखते परिवार और परिश्रम पर न पड़ती थी। उसकी वहशी नजरें तो केवल उसके जिस्म को टटोलती थीं।

हमारा समाज नौकरों अथवा मजदूरों के प्रति असंवेदनशील है। यदि महिला मजदूरों अथवा नौकरानियों के विषय में विचार करें तो परिणाम और भी घातक निकलेंगे। वे बंद घरों, अपार्टमेंटों के भीतर अथवा कार्यस्थलों पर आए दिन छेड़-छाड़, सेक्सुअल एब्यूज़, बलात्कार एवं सामूहिक बलात्कार जैसी आत्मा को दहला देने वाली दुर्घटनाओं की शिकार हो रही हैं। 'नूराबाई' कहानी के माध्यम से चन्द्रकान्ता उच्च वर्ग अथवा स्वयं को सभ्य कहने वाले इस समाज के मुखौटे को उतार उसकी कलई खोल देती हैं। नूराबाई का सेठ झूठी हमदर्दी दिखाकर उससे कहता है कि वह घर जाकर आराम करे और यहाँ अपनी बेटी हसीना को भेजे। महज दस वर्ष की हसीना को देख उसकी लार टपकने लगती है। उसकी आँखों में हवस तैरने लगती है। वह अधेड़ उम्र का सेठ मासूम बच्ची हसीना का बलात्कार करता है। जिससे उस छोटी सी उम्र की बच्ची हसीना का नाजुक तन और मन काँप उठते हैं। क्षत-विक्षत हसीना को देख उसकी माँ नूरा का हृदय भी उद्वेलित हो जाता है -"सेठ ! तुझे अपनी बेटी से मेरी बच्ची बड़ी लगी ? अभी-अभी तो उसने दस साल पूरे किये हैं। सेठ ! इसी जहान में तेरा हिसाब-किताब पूरा होगा, तेरी देह में कीड़े पड़ेंगे ....।"[6]

अतः चन्द्रकान्ता की कहानियाँ समाज में कामकाजी स्त्रियों की दशा और दिशा के प्रति गंभीर चिंतन और जागृति की कहानियाँ हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में कामकाजी स्त्रियों के जीवन की पारिवारिक तथा सामाजिक यातनाओं और घर अथवा बाहर के संघर्षों को रेखांकित किया है। नारी की स्वतंत्रता और व्यक्तित्व का निखार ही उनकी कहानियों का ध्येय है। वे अपनी लेखनी द्वारा कामकाजी स्त्रियों को सचेत एवं स्वावलंबी बनाने के मार्ग में प्रयासरत हैं। जिससे भारतीय स्त्री अपने अस्तित्व को जाने, अपनी अस्मिता की रक्षा कर सके तथा स्वाभिमान के साथ जी सके।

संदर्भ :

1. चन्द्रकान्ता. (1996). काली बर्फ. (शेष दिन).नई दिल्ली : किताब घर. पृ. 74
2. चन्द्रकान्ता. (1989). दहलीज पर न्याय. (धराशायी). नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृ. 122
3. चन्द्रकान्ता. (1989). दहलीज पर न्याय. (धराशायी). नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृ. 124
4. मुले, डॉ. रेखा. (2005). कथाकार चन्द्रकान्ता. कानपुर : विकास प्रकाशन. प्रस्तावना पृष्ठ से...

5. संचारिका. अप्रैल-मई-जून 2007. अंक 12. पृ. 32-33
6. चन्द्रकान्ता. (1989). दहलीज पर न्याय. (नूराबाई). नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृ. 139

संदर्भ ग्रंथ :

1. चन्द्रकान्ता. (1993). कोठे पर कागा. नई दिल्ली : किताब घर
2. चन्द्रकान्ता. (1988). पोशनूल की वापसी. नई दिल्ली : पराग प्रकाशन
3. चन्द्रकान्ता. (1996). काली बर्फ. नई दिल्ली : किताब घर
4. चन्द्रकान्ता. (1989). दहलीज पर न्याय. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
5. मुले, डॉ. रेखा. (2005). कथाकार चन्द्रकान्ता. कानपुर : विकास प्रकाशन
6. सिंह, डॉ. विजयमोहन. आज की कहानी. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7. कप्पीकेरे, डॉ. सौ. मंगल. (2002). साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में नारी. कानपुर : विकास प्रकाशन
8. शुक्ल, उमा. (1994). भारतीय नारी अस्मिता की पहचान. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन
9. पवार, डॉ. रामेश्वर. (2008). नवम दशक की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन. कानपुर : विकास प्रकाशन